वेदांत सिद्धांत

जो कुछ यह नाना रुप प्रतीत हो रहा है यह वस्तुतः एक है। वास्तव में परमार्थ सत्ता असली हस्ती है। जिसको ब्रह्म या परमात्मा कहते हैं। वह शुद्ध चैतन्य व शुद्ध ज्ञान है। अर्थात् वह जानने वाला नही किन्तु स्वयं ज्ञान है। वह निर्गुण है। वह आप ही है जो कुछ है। उसमें और कुछ नही। इसीलिये वह निर्गुण निर्विशेष है। पर वह सत् हस्ति एक है और कुछ नहीं तब यह सारा प्रपंच कहां से आया? जिसको हम अपने चारो ओर देखते हैं। जिसमें हम अपनी स्वयं एक अलग सत्ता रखते हैं। तो उत्तर यह है कि ब्रह्म के साथ अनादि काल से एक शक्ति है जिसको माया या अविद्या कहते हैं। यह सारा प्रपंच उसी से दिखाया जाता है। यह शक्ति न सत् कहलाती है क्योंकि सत् केवल ब्रह्म है, न असत् क्योंकि किसी न किसी भांति इस प्रपंच को प्रकट कर देती है। वस्तुतः यह इस भ्रान्ति का अनिर्वचनीय कारण है। जिससे हम अपने चारों ओर जड़ चैतन्य की विविध सृष्टि देख रहे हैं। ब्रह्म इस शक्ति के द्वारा इस प्रकार जड़–चैतन्य की अनेक सृष्टि को दिखला देता है जैसे कोई मायावी इन्द्र जालिक अपनी माया शक्ति से अनेक प्रकार की जड़–चेतन वस्तुऐं प्रकट कर दिखला देता है, जो वस्तुतः भ्रान्ति मात्र होती है।

शक्ति रूप से जहाँ तक माया का संबंध ब्रह्म के साथ होता है, वहाँ तक हम ब्रह्म को जगत् का उपादान कारण कह सकते हैं। अर्थात् स्वरूप से निमित्त और माया स्वरूप से उपादान। पर माया ब्रह्म की ही अनिर्वचनीय शक्ति है, उससे भिन्न पदार्थ नहीं है। माया शबल ब्रह्म ही जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कारण है। माया के संबंध से प्रायः ब्रह्म को ईश्वर कहते हैं। माया ईश्वर के अधीन होकर क्रमशः इन भिन्न–भिन्न रूपों में परणित हुई है जिनका समुदाय यह जगत है। जो अपन–अपने प्रति नियत नाम और रूप से निखेरे जाते हैं। भूत, भौतिक शरीर और इन्द्रियाँ यह सब उसी का परिणाम हैं। यह सारे शरीर जो एक दूसरे से भिन्न हैं इन सब में एक ही अभिन्न ब्रह्म है। जो माया कृत ज्ञान और कर्म के भेद से प्रति व्यक्ति भिन्न–भिन्न प्रतीत होता है। वही जीव है। जीव का परमार्थ रूप ब्रह्म है। वह एक अद्वितीय ब्रह्म है तथा प्रति शरीर ज्ञान और कर्म की भिन्न–भिन्न शक्तियों से एक जीव दूसरे से भिन्न किया जाता है। ये शक्तियाँ माया का कार्य हैं इसलिये मिथ्या हैं। यह जगत इन ही भिन्न–भिन्न जीवों से भरा हुआ है। पर न यह जीव और न उसकी उपयागी वस्तुऐं परमार्थ सत् हैं। क्योंकि ये दोनों माया से सम्बन्ध रखते हैं, माया से दिखलाये जाते हैं, इसीलिये मिथ्या हैं। इसी प्रकार यह सारा भेद मिथ्या है। वस्तुतः भेद है नहीं और प्रतीत होता है। इसी मिथ्या दृष्टि ने अपना परमार्थ स्वरूप भुलाया हुआ है। अब यह भूला हुआ आत्मा अपने असली स्वरूप को नहीं जानता है। इसका अपना परमार्थ स्वरूप इस माया के परदे से ढका हुआ है। यह अपने आपको ब्रह्म समझने की जगह उन उपाधियों, शरीर और इन्द्रियों को अपना आपा समझ रहा है जो माया का कार्य है। इस प्रकार यह आत्मा, शरीर, इन्द्रियों और मन को ही अपना असली स्वरूप जानकर, इनकी सारी अवस्थाओं को अपनी अवस्था मानता हुआ कहता है, मैं मोटा हूँ, मैं दुबला हूँ, मैं अंधा हूँ, मैं बहरा हूँ, मैं शोक में हूँ, मैं चिन्ता में हूँ, मेरा जन्म अमुख सम्वत् में हुआ, अब मैं बूढा हो गया हूँ, मैं रोगी हूँ और मैं मर जाऊँगा इत्यादि।

सो यह आत्मा जो परमार्थतः शुद्ध, ज्ञानस्वरूप और अनंत है, इस अध्यास के कारण यह एक सीमा हद में आ जाता है, अल्पज्ञ और अल्पशक्ति हो जाता है, और कर्ता भोक्ता बन जाता है। अपने कर्मो द्वारा पुण्य और पाप का संचय करता है और ईश्वर की मर्यादा में उनके शुभाशुभ फल भोगता है। जब तक यह रचना स्थिर रहती है, यह भी बार बार जन्म ग्रहण करता है। कर्म करता है और फल भोगता है। कल्प के अंत में ईश्वर इस सारे प्रपंच का संहार कर लेते हैं। अर्थात् यह सारा माया का कार्य अव्यक्त माया के रूप में वापस आ जाता है। तब ये सारे जीव करने भोगने से रहित हो जाते हैं, मानो उतने काल के लिये गहरी नींद सो जाते हैं। पर उनके कर्मो की वासना अब भी नष्ट नहीं

होती है। अतएव फिर नये शरीरों को धारण करते हैं, जब ईश्वर फिर नये सिरे से सृष्टि रचते हैं। और इसी तरह वह आगे नये कल्पों में शरीरों को धारण करते चले जायेंगे जैसे कि ये अनादि काल से पिछले कल्पों में धारण करते चले आये हैं। इसी का नाम संसार है। यह संसार तब तक बना रहता है जब तक अज्ञान है। जब ज्ञान से अज्ञान का नाश हो जाता है तब यह संसार निवृत हो जाता है। पर यह उस एक के लिये निवृत हुआ भी दूसरे के लिये बना रहता है जो अज्ञान की अवस्था में है। वह मार्ग जिससे ज्ञान का उदय होता है, वेद में बतलाया गया है। वेद में दो मार्ग बतलाये हैं। एक कर्म का दूसरा ज्ञान का। कर्म चाहे कैसा भी ऊँचे से ऊँचा क्यों न हो वह मनुष्य को संसार से पार नहीं ले जा सकता। उसका बड़े से बड़ा फल भी संसार के अंतर्गत ही होता है। दूसरा मार्ग ज्ञानकांड का है। इसके दो भेद हैं। एक वह भाग जिसमें ब्रह्म का ज्ञान वहाँ तक दिया है जहाँ तक उसका संबंध जगत् से है। इस भाग में ब्रह्म के भिन्न भिन्न गुण वर्णन किये हैं। अर्थात् इसमें सगुण ब्रह्म, ईश्वर और हिरण्यगर्भ का उपदेश है और यह उपासना के लिये है। इसको उपासना कांड कहते हैं। इसमें सगुण ब्रह्म की उपासना से जीवात्मा मुक्ति नहीं पाता है किन्तु वह शरीर को छोड़ कर केवल ब्रह्म लोक में जाता है। जहाँ वह एक अलग जीव के तौर पर बना रहता है। यद्यपि उसकी शक्ति व ज्ञान बहुत बढ़ जाते हैं। अंततः वह निर्गुण ज्ञान का लाभ करता है और मुक्त हो जाता है।

दूसरा वह मार्ग है, जिसमें ब्रह्म का शुद्ध स्वरूप सारे गुणों से रहित निर्गुण वर्णन किया है। जिसमें जीवात्मा को ब्रह्मरूप बतलाया है। वे ज्ञानी जो ब्रह्म के शुद्ध स्वरूप को जानते हैं जो सारे गुणों से परे है, और महावाक्यों 'तत्वमसि' आदि द्वारा जान लेते हैं कि आत्मा के परमार्थ स्वरूप और परमात्मा में कोई भेद नहीं है। वह उसी क्षण परम मुक्ति लाभ करते हैं। अर्थात् माया के प्रभाव से परे हो जाते हैं और अपने असली स्वरूप को पा लेते हैं। जो केवल शुद्ध ब्रह्म है। यह अद्वैत सिद्धांत है। जिसके विचार से जीव कृतकृत्य हो जाता है। उसके ज्ञान में ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ नहीं रहता। यही मनुष्य जीवन का मुख्य उद्येश्य है। इसी के लिये परमात्मा ने मनुष्य शरीर दिया है।

बोलो प्रेम से सच्चिदानंद सनातन ब्रह्म की जय।